International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 6 Issue 8 || August. 2017 || PP. 64-67

रसिक गोविन्द के काव्य में माधुर्य एवं प्रवाह

डॉ. प्रियंका गुप्ता

एसोसिएट प्रोफेसर,
एम.एच. पी जी कॉलेज, मुरादाबाद

रसिक गोविन्द माधुर्य के कवि हैं। माधुर्य भावों का आधार रस है। श्रृंगार के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का सुंदर चित्रण उनके काव्य में हुआ है। श्रृंगार के साथ–साथ भक्ति, शांत एवं वात्सल्य रसों के भी उदाहरण प्राप्त होते हैं। प्रसंगवश अद्भुत, करुण एवं हास्य की भी सृष्टि की गयी है। अतः माधुर्य के अंतर्गत रसिक गोविन्द के काव्य में रसों तथा भावों का सोदाहरण विवेचन क्रमशः प्रस्तुत किया जा रहा है। रसिक गोविन्द रसिक संप्रदाय में दीक्षित रसोपासक है। रसोपासना का मुख्य भाव माधुर्य भाव है जिससे उनका काव्य ओतप्रोत है। यह मधुर रस प्रायः स्पष्ट और कहीं–कहीं सांकेतित भी हैं। यह मधुररस श्रृंगार का ही पोषक होने से रसिक गोविन्द ने इसे उत्तम श्रृंगार कहा है। यद्यपि माधुर्य पदवी प्राप्त कर श्रृंगार में रसिक गोविन्द के अनुसार वियोग के लिए अवसर नहीं है फिर भी उपासना में वैविध्य एवं काव्य में चमत्कार के हेतु वियोग श्रृंगार की सरस अभिव्यक्ति रसिक सुंदर की कविता में प्राप्त होती है।

आचार्यों ने वियोग या विप्रलेख श्रृंगार को पूर्वराग, मान, प्रवास एवं करुण इन चार भेदों में विभक्त किया है। रसिक गोविन्द के काव्य में वियोग श्रृंगार के अंतर्गत पूर्वराग, मान और प्रवास का ही वर्णन विशेष रूप से पाया जाता है।

पूर्वराग

मिलन से प्रथम प्रत्यक्ष, श्रवण, चित्र या स्वप्नदर्शन से जो प्रीति होती है वह पूर्व राग है।[1]
गुणश्रवण एवं चित्रदर्शन से उत्पन्न पूर्वराग का सरस वर्णन निम्नलिखित चरणों मं दृष्टव्य है।

''चित्ररूप दरसन हरि देखे। घनि घनि भाग अपने लेखे।।
देखत चित्र हाथ गह राणें। बार बार बिघना सौ पाणें।।
कब यह मूरत नेनन देखों। घन्यभाग अपनें करि लेखों।।
कबहु चित्र के सीस चढ़ावै। कबहु चित्र छाती सों लावे।।
कबहु ध्यान धरत टक लावै। पलवन नैन निमेण लगावें।।
अद्भुतरूप मनोहरताई। निरखत नैनन रूप निकाई।।
इहि बिधि चरित चित्र सैं करै। मन आनंद सरस रख भरें।।[2]

राधा की विरहव्याकुलता का सुंदर चित्र रसिक गोविन्द ने उतारा है, वह पूर्वराग विप्रलंभ श्रृंगार का सरस उदाहरण है। यथा–

देखत मन आनंद बढ़ायो। सुंदर स्याम सरस रस कायौ।।
कृष्णरूप अपने ढिंग जान्यो। परम पुनीत भाग निज मान्यौं।।
गये नैन खुल हरि नहिं देखे। सुंदर प्रीतम पास न लेखे।।
भयो विरह दुख अति मन मौहीं। सुध बुध रही देह की नाहीं।।
सब निसनींद नेक नहिं काई। चिंतत दिस पीरी परि आई।।
हरि के विरह दुःख अति मांन्यो। सूनौं सबै जक् जिय जांन्यौं।।
अति आतुर चिंता चित दीनैं। तनमन हरि कूँ अरपन कीनैं।।[3]

मान विप्रलंभ

आशा के प्रतिकूल अपराधजनित को मान कहते हैं।[4]

श्री राधा अपने ही दर्पणस्थ रूप पर रीझ गयी और अपने कृष्णरूप धारण किया। इस गोरे कान्ह को देख कर श्री कृष्ण को आश्चर्य हुआ। श्रीकृष्ण ने भी लीला हेतु राधारूप धारण किया। गोरे प्रियतम और सांवली प्यारी के रूप मोहक हो उठे। इनके मान का निम्नलिखित उदाहरण देखिए–

[1]काव्यशास्त्र– डॉ. भगीरथ मिश्र, पृष्ठ 265
[2] प्रेम बिनोद– रसिक गोविन्द छंद–22–23, एवं 24
[3] प्रेम विनोद– रसिक गोविन्द, छंद–27, 28, 29
[4]काव्यशास्त्र– डॉ. भगीरथ मिश्र, पृष्ठ 265

अति अनूप छवि रूप निकाई। मुख बैठे कर मान रुखाई।
चितवन नाहिंन सूधे लोचन। कंजन खंजन मृग मद मोचन।।
सौ है चितवन नाहिं हंसी कहत न मुषसों बैन।
खनत भूमि पद नखन ते किये बिधो है नैन।।[5]

रसिक गोविन्द ने विलोम मान के सहारे अपनी मधुरता एवं प्रवाह का एक सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया है। विलोम मान के संबंध में वे स्वयं प्रश्न उठाते हैं, कि हमारे चित्त में यह आशंका है कि यहाँ विलोम मान कैसे हो सकता है, जबकि यहाँ तो रस का विकास दिखाई पड़ रहा है और स्वयं ही इसका उत्तर देते हैं–

और स्वयं ही उसका उत्तर देते हैं,

उलट प्रेम की चाल है, उलट प्रेम की रीत।
जीतन माँ ही हार है, हारन माँही जीत।।[6]

शरद् पूर्णिमा का रासपूर्व प्रसंग है। श्रीकृष्ण की बंसी सुनकर प्रेमवती गोपियाँ सब कामकाज छोड़ कर दौड़ती हुई आयीं। किंतु कृष्ण के मानयुक्त कठोर वचन सुन कर अत्यंत दुःखित एवं भग्न मनोरथ हुई। यहाँ प्रिय का मान और प्रिया की प्रणति वर्णित है जो साधारण मान वर्णन (प्रिया का मान एवं प्रिय की प्रणति) के विपरीत होने से रसिक गोविन्द ने इसे विलोम मान कहा हे। निम्नलिखित पंक्तियों में इसकी सरसता प्रकट होती है।

नम्र बदन नारिन यों कियो। भाई लाज हरि मन हर लियो।।
हरि हू बात कठिन यों कही। यातें बदन नीची है रही।।
अधर बिंब हरि का मन आये। तातैं लै लै सांस सुखाये।।
करि के हित हरि हमें बुलाई। अब ऐसे कीन्हीं निठुराई।।
हरि को हि अक अनहित गिनै। यातें वचन कहत नहिं बनें।।
जो श्री हरि अनहेत जनावै। फटे भूमि इह माँहि समावैं।।[7]

प्रवास के प्रसंग में भी रसिक गोविन्द ने अपने माधुर्य एवं प्रवाहमयी शैली का परिचय दिया है।

श्रीकृष्ण के मथुरागमन पर गोपियों के विरह का सरस वर्णन निम्न लिखित दोहे में रसिक गोविन्द ने किया है।

वहि जमना वहि तीर तरु वहि द्रुमलता कदंब
सुखद दुखद सब स्याम बिन वहि कोयल वहि अंब।।[8]

रसिक गोविन्द राधाकृष्ण युगल की लीला के गायक हैं। यह लीला श्रृंगार लीला है जो मुख्यतः संयोग पर आधारित है। उनकी राधा–कृष्ण के युगल स्वरूप में संयोग श्रृंगार के अनेक सजीव चित्र मिलते हैं। वृंदावन की प्राकृतिक शोभा, सुंदर कुंज, भवन आदि उद्दीपन के रूप में प्रस्तुत हुआ है। राधाकृष्ण की प्रेमपूर्ण क्रीड़ाएँ अनुभाव हैं। क्रीड़ाओं के बीच औत्सुक्य, हर्ष, जड़ता, घृति, आवेग आदि भिन्न–भिन्न संचारी भावों की अभिव्यक्ति हुई है। स्थायी भाव रति है। इन सभी के संयोग से पुष्ट होकर स्थायी भाव रति संयोग श्रृंगार रस में परिणीत होता है।

रूपा रस, नैन बरनन नामक इक्कीसवीं कुंज लीला के प्रसंग में राधाकृष्ण परस्पर रूप निहारते हैं। आलस में उलझे हुए नयन हृदय में उलझ जाते हैं। संयोग श्रृंगार का यह मार्मिक चित्र दर्शनीय है–

कर पल्लव घर चिबुक तर लषि छवि दृगन विसाल।
लगे लोभ रस रूप के पोढत नाहिंन लाल।।[9]

रूप का जादू ऐसा है कि लाल विलास सेज पर पौढ़ना भी भूल जाते हैं। यहाँ मात्र रूप दर्शन से अनुभूत मिलन का पूर्ण आनंद अभिव्यक्त होता है। इस छंद में आलम्बन कृष्ण है। उद्दीपन राधा का रूप सौंदर्य है। हाथ से चिबुक उठाना, अनिमिष नेत्रें से देखना आदि अनुभाव है। जड़ता, घृति, औत्सुक्य, मोह, हर्ष आदि संचारी भाव है और इनसे पुष्ट स्थायी भाव रति संयोग श्रृंगार में परिणत होता है।

रूप दर्शन में कुछ दूरी रह जाती है। वह असहनीय हो जाती है, और स्वाभाविक रूप से संयोग की तीव्र लालसा यदि आलिंगन के लिए प्रवृत्त करती है तो आश्चर्य नहीं। यह तो क्रमागत है। यथा–

छबि सूँ बाह म्रिनाल की उरझत सौभा देत।
अरस परस लिपटत हिये जुगल भरे रस हेत।।[10]

---

[5] निकुंजरस माधुरी– रसिक गोविन्द, छंद 78
[6] रास रस माधुरी– रसिक गोविन्द, श्लोक 35 का भाष्य।
[7] रास रस माधुरी रसिक गोविन्द, श्लोक–21 का भाष्य
[8] सुमन प्रकाशन– रसिक गोविन्द, छंद 25
[9] निकुंज रस माधुरी– रसिक गोविन्द, छंद 61

परस्पर आलिंगन में हृदय से हृदय लगाकर लिपटना, उलझी हुई मृणाल–नाल सी बाहों के मृदु, सुखद स्पर्श से रस विभोर हो उठना इत्यादि से यौवनपूर्ण रसिक युगल का संयोग श्रृंगार यहाँ अत्यंत मधुर रीति से वर्णित है।

संयोग श्रृंगार का और एक मनोरम चित्र देखिए–जिसमें प्यारी राधा प्यारे कृष्णको गलबाँही दिये लता बेलियों के मध्य से कुंज भवन की ओर जा रही हैं। उसके वस्त्र लता बेलियों में उलझते हैं जिन्हें प्रियतम अपने हाथ से सुलझाते चले हैं। वस्त्र तो सुलझाया गया किन्तु गले में उलझे हुए प्रेयसी के कर कमलों के हार को सुलझाना कैसे संभव है? संयोग श्रृंगार का यह उदाहरण द्रष्टव्य है–

आवत कुंज भवन मैं प्यारी दिये कंठ गलबाँही।
उरझत चीर लता बेलिन सों निज कर पिय सुरझांही।।[11]

हास्य रस द्वारा भी रसिक गोविन्द को अपने काव्य में माधुर्य व प्रवाह को अत्यंत सरलतापूर्वक पकड़े हुए है। हास्य मनुष्य के मुख, हृदय एवं मस्तिष्क को विकसित करता है। वचन, विचार एवं चेष्टाओं की विसंगति से हास्य का निर्माण होता है। हास्य मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य का वर्धक है। वह वैयक्तिक एवं सामाजिक मन के परिष्कार में भी सहायक हो सकता है। अपनी विनोद बुद्धि के कारण उसे जीवन एवं जगत् की सूक्ष्म एवं स्थूल विसंगतियों की पहचान होती है जिनकी हास्यपूर्ण अभिव्यक्ति के कारण वह एक सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति भी करता रहता है।

श्रृंगार रसांतर्गत हास्य का प्रयोग रसिक गोविन्द ने बहुत सुंदर ढंग से किया है। वह निम्नलिखित छंद में प्रस्तुत है–

कैसे खुले गांठ रंग बोरी। छिन छिन घुरै रंग की डोरी।
दै दै मुख आंचल सहचारी। हंसै लसै छविरूप उजारी।।[12]

श्रीकृष्ण कंकन की गांठ खोलते हैं। यह रेशम की गांठ रंग में घुल जाने से अधिकाधिक दृढ़ होती जा रही है। वर के द्वारा वधू के कंकन की गांठ छुड़ाई न जाने से वर की फजीहत पर वधू की सखियों की हँसी स्वाभाविक ही है।

प्रिय पदार्थ या प्रिय व्यक्ति से वियुक्त होने पर या उनके विपत्ति में पड़ने पर मन में जो कष्ट होते हैं, वही शोक है। शोक ही करुण रस का स्थायी भाव है। मनुष्य जीवन की कर्तव्य भावनाओं का समाहार करुण रस में होता है। करुण रस आँसुओं का उत्स है जो हृदय के कल्पना को धो डालता है। 'सुरति बिनोद' नामक ग्रंथ में पतिगृह को जाने के लिए उद्यत सुंदरी नामक रमणी के वियोग–विरह का जो वर्णन किया गया है, वह करुण प्रवाह का सुंदर उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है:–

सजल नैन गदगद यह बांनी। मिल मिल तिय सब सौं बिलखानी।।
जो सब सखी संग मिल खेली। सो सब बिछुरन लगी सहेगी।।
बिछुरत देखि सुता अति प्यारी। बिलखत भ्रात तात महतारी।।
छिन छिन तिय को कंठ लगा वै। नैनन नेह मेह बरसावै।।[13]

अन्य रसों में चमत्कार से वात्सल्य का चमत्कार अतिरिक्त है, अर्थात् आनंद भी भिन्न है अतः रसों में इस रस की गणना हो गयी है। संतान का वात्सल्य माता–पिता के अनुभव की बात है। इससे वंचित व्यक्ति का जीवन एक दृष्टि से अपूर्ण है। स्वाभाविक रूप से प्राप्त इस रस की अनुभूति सौंदर्य भावना, कोमलता, आशा आदि कतिपय मानवी वृत्तियों को सार्थक करती है। यथपि माता–पिता दोनों में वात्सल्यभाव निहित हैं किंतु वात्सल्य की पराकाष्ठा माता ही में होती है। संतान के कारण ही माता का जीवन सुफल हो जाता है। वह उसका प्रकृतित्व कार्य है। शिशु के पल–पल परिवर्तित रूप और भाव, उसकी मधुर कोमल चेष्टाएँ आदि से माता–पिता के मन में स्नेहमय आनंद की सृष्टि हो जाती है, वही वात्सल्य है।

सुरति बिनोद नामक ग्रंथ में रसिक सुंदर ने एक सचिव की सुंदरी नामक कन्या के बालापन का वर्णन किया है। इस कन्या के जन्म के कारण संलब्ध आनंद उसकी बाल्यलीलाओं से उसके माता–पिता के हृदय में होता है। इस प्यारी पुत्री के मृदु वचन, ठुमककर चलने में ध्वनित पैरों की रूनझुन, घुंघरू की ठुमकन इत्यादि से उनके चित्त में अप्रतिम वात्सल्य का चित्रण निम्न पंक्तियों में माधुर्य एवं प्रवाह दृष्टव्य है–

तात मात अति लाह लहावै। निरणि मन हरण बढ़ावैं।
ऐसे करत बहुत दिन बीते। बोलन लगी भये मन चीतै।।
पायन लगी चलन जब भू पर। बांधे तात मात पग नुपुर।।
ललना अंगना चलत सुहावै। ठुमक ठुमक घंगरू ठुमकावै।।
रूनुझुनु रूनुझुनु आगँन मेलै। सुक कलों मृदुं बातै बोलै।।[14]

---

[10] निकुंज रस माधुरी– रसिक गोविन्द, छंद 116
[11] लीला रस माधुरी– रसिक गोविन्द, छंद 112
[12] निकुंज रस माधुरी, पृष्ठ 74
[13] सुरति बिनोद, रसिक गोविन्द छंद 42,43
[14] सुरति बिनोद, रसिक गोविन्द, छंद–8,9,10

विस्मय का कारण जिज्ञासा है। ज्ञातव्य के विषय में अनबुझ रहना, तर्क वितर्क में फंसना, उससे अभिभूत होना, इसके लक्षण है। लोकोत्तर पदार्थों के प्रति आश्चर्य का भाव इसी के अंतर्गत आ जाता है। दार्शनिकता का उद्‌गम भी इसी में है। लौकिक एवं अलौकिक वैचित्यपूर्ण पदार्थों के अवलोकन एवं वर्णन में जब आश्चर्य का परिपोष होता है तब अद्‌भुत रस की प्रतीति होती है।

रसिक गोविन्द के प्रेमविनोद नामक खंडकाव्य में राधाकृष्ण के अनुराग का वर्णन है। ललिता आदि सखियाँ श्री कृष्ण के रूप का वर्णन करती है जिससे उनकी रूप छवि देखने के लिए राधिका अधीर हो उठती है। ललिता जब उनका अति नवीन यौवनपूर्ण छवि से जगमगाता चित्र अंकित करती है तो उस अलौकिक रूप के दर्शन से राधा विस्मय–विमुग्ध हो जाती है। अद्‌भुत रस का यह मार्मिक प्रवाहपूर्ण उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है–

जक्ति थकित ह्वै चकित चित पूरन प्रेम प्रलाप।
अति विचित्र लखि चित्र को चिररूप महू आप।।[15]

शांतरस निवृतिमूलक हैं। संसार की असारता के ज्ञान से जो निर्वेद होता है, वह इष्ट–वियोग या अनिष्ट की प्राप्ति से उत्पन्न निर्वेद नामक संचारी भाव से भिन्न होता है। शांतरस में तत्वज्ञान से वैराग्य की भावना का उत्कर्ष होता है एवं अहंकार का संपूर्ण उपशम होता है। सांसारिक विषयों की अनित्यता एवं दुःखमयता का ज्ञान तथा परमात्म स्वरूप का ज्ञान इसके विषय बनते हैं।

''श्री भक्ति महारानी की महिमा'' नामक काव्य में शांत रस का यह उदाहरण दृष्टव्य है–

घन घन घन हरिजन जग माँही।
भक्त भाव रसरीत हृदे अति और नचित मैं चाही।
ब्रिहूमलोक लों सुष जग जेते जानत सदा ब्रिथा ही।
सुंदर मुक्ति पदारथ दुर्लभ सोऊ चाहत नाहीं।।[16]

यहाँ हरिजन के शांत स्वभाव का वर्णन किया गया है। संसार के सभी सुखों की व्यर्थता, मुक्ति की भी असारता, इच्छाहीनता आलंबन विभाव हैं। हरिजनों का उदात्त चरित्र उद्दीपन विभाव है। भक्तिभाव में एवं रसरीति में निमग्नता, अनुभाव है। उत्साह, हर्ष, बोध घृति आदि संचारी भाव है। स्थायी भाव निर्वेद है जो शांत रस रूप में मूर्तिमान हो उठा है।

रसिक गोविन्द के रंगदेवी अष्टक में पंथ प्रवर्तक रंगदेवी अर्थात् श्री र्निबार्काचार्य के संबंध में उनके भक्तिपूर्ण उद्‌गारों में भक्तिरस की सुंदर झलक है। यथा,

तो सी तू ही श्री महारानी।
त्रिविध ताप हारन दुषटारन दयासिंध सुख सानी।
सब सुख दायक सदा सहायक मनवांछित फल दानी।
भक्ति अभै पद पांऊ सुंदर श्री रंगदेवी रानी।।[17]

''अधम उधारन'' प्रसंग में अपने अवगुणों की गणना करते आमौध्दारक प्रभु की भक्तिपूर्ण विनय निम्नलिखित छंद में देखिएः–

त्यारे अधम अनेक ज्यों ऐसेहि मोहि ऊबार।
में नित अघम असाध हूँ तुम नित अधमउधार।।[18]

यहाँ ईश्वर (श्रीकृष्ण) आलंबन स्वीकार कर ईश्वर द्वारा अनंत अद्यमों का उद्धार नित्यप्रति किया जाना, उनकी दयाशीलता आदि का वर्णन कर विनय, पश्चात्तापयुक्त कथन आदि अनुभाव दैन्य निबोध, घृति, स्मृति इत्यादि संचारी भावों के माध्यम से कवि ने मधुरता के साथ प्रवाह का तीव्र संचार किया है।

[15] प्रेमविनोद– रसिक गोविन्द, छंद–21
[16] निकुंज रस माधुरी– रसिक गोविन्द, पद 16
[17] रंगबिनोद– रसिक गोविन्द, पद–6
[18] दास लच्छन– रसिक गोविन्द, छंद–16